

# राजनीति नहीं राष्ट्रनीति

(अग्रलेखों का संकलन)

लेखक

पं० क्षितीश वेदालंकार

संपादक

डॉ० वेदव्रत 'आलोक'

रीडर, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय

पं० क्षितीश वेदालंकार स्मृति न्यास

१९६६

## राजनीति नहीं राष्ट्रनीति

(अग्रलेखों का संकलन)

प्रथम संस्करण : अक्तूबर, १९६६

प्रकाशन :

पं. क्षितीश वेदालंकार स्मृति न्यास

डी-८१, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली - ११० ०४६

मूल्य : ५०० रुपये

मुद्रण :

सिस्टम्स विज़न

ए-१६६, ओखला - I, नई दिल्ली

इस पुस्तक की सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग किया जा सकता है।

स्रोत का ढल्लेख करें एवं एक प्रति न्यास को भेजें तो अच्छा लगेगा।

## पं. क्षितीश जी का राष्ट्र-चिन्तन

बीसवीं सदी का प्रबुद्ध जगत् पं. क्षितीश कुमार वेदालंकार के लेखन-सम्पादन एवं वक्तृत्व द्वारा आधी शती से भी अधिक समय तक प्रभावित होता रहा है। वे सम्पादक के रूप में वे दैनिक वीर-अर्जुन तथा 'हिन्दुस्तान' के माध्यम से पूरे भारत के प्रबुद्ध पाठकों से जुड़े हुए थे। बाद के परिपक्व १३-१४ वर्ष उन्होंने 'आर्य-जगत्' को समर्पित किये। इस साप्ताहिक आर्य-पत्र की पाठक-संख्या सीमित होने पर भी उनका लेखन पूरे भारतीय परिदृश्य का आकलन करते हुए प्रवृत्त रहता था।

पं. क्षितीश जी के चिन्तन में भारतीयता, वैदिक परम्परा, सर्व-पन्थ-समन्वय, सर्वहितकारी दर्शन और देश-गौरव का अनुपम समन्वय सदा बना रहता था। उन के चिन्तन का फलक व्यापक था और अभिव्यक्ति स्पष्ट, सरल और बेबाक। उन के विचारों से असहमत व्यक्ति भी उनकी सच्ची, तर्कपूर्ण और सशक्त लेखनी का लोहा मानता था। उनके इस वैशिष्ट्य को देखते हुए अनुभव किया गया कि उनके सम्पादकीयों-अग्रलेखों को पुस्तकाकार छपाया जाए।

उनके जीवन काल में ही छः पुस्तकें उनके अग्रलेखों को संकलित करके छपी गई थीं। इन पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण इस पुस्तक के अन्त में दिए गए पण्डित जी की अन्य पुस्तकों के विवरण के साथ है। अब उनके दिवंगत होने के छह वर्ष बाद इन अग्रलेखों का यह संकलन कुछ विशिष्ट समझ के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। इस में उन के जीवन के अवसान-काल के परिपक्व-तम अग्रलेख हैं। इन की कालावधि जनवरी १९८७ से मई १९९२ के करीब साढ़े-पांच वर्षों की है। पण्डित जी ने दिसम्बर १९९२ में शरीर छोड़ा था। कहना चाहिए कि जीवन की अन्तिम सांस तक उनका राष्ट्र-चिन्तन चलता रहा।

पण्डित जी अपने सम्पादकीय दायित्व-निर्वाह के प्रति सदा जागरूक रहते थे। समाज, देश या विश्व में होने वाली किसी भी गतिविधि का निर्विकार-भाव से गहरा अध्ययन-विश्लेषण एवं अनुभव करके वे ऐसी प्रतिक्रियाएं अभिव्यक्त करते थे जिन में जनमानस की अनुभूति हो तथा सर्वजन-हित की अदम्य भावना भरी हो, किसी एक पक्ष का पोषण नहीं। अपने अग्रलेखों के माध्यम से

वे अपने अध्ययन-मनन-निदिध्यासन और अनुभवों तथा चिन्तन-कणिकाओं का प्रसाद वितरित करते रहते थे।

कुछ प्रश्न उठने स्वाभाविक हैं। आज लगभग एक दशाब्दी के बाद पं. क्षितीश जी के सम्पादकीयों को पुस्तक के आकार में पुनर्मुद्रित करने की क्या सार्थकता है? उन के तत्कालीन विचारों की प्रासंगिकता आज क्या है? और विविध काल-खण्डों में प्रति-सप्ताह लिखी गई उन समसामयिक अभिव्यक्तियों और तात्कालिक प्रतिक्रियाओं में क्या कोई एकसूत्रता है?

इसके अतिरिक्त.....

पण्डित जी ठहरे बहुमुखी प्रतिभा के धनी और आर्यसमाज से लेकर पूरे विश्व-समाज के विषय में, तथा पर्यटन व यायावरी से लेकर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और आध्यात्मिक दर्शन तक के विस्तृत आयामों से जुड़कर सोचने और लिखने वाले। तो क्या कोई क्षेत्र ऐसा भी हो सकता है, जिसमें उनकी मौलिक जीवन-दृष्टि को रेखांकित किया जा सके?

ऐसे अनेक प्रश्नों के साथ मैंने पण्डित जी के सम्पादकीयों का अध्ययन किया। सोचा कि उनके संकलित अग्रलेखों को किस नाम से पुकारा जाए? तभी उन का एक सम्पादकीय (३० जून, १९६१) नज़र से गुज़रा। उसका शीर्षक यही था — 'राजनीति नहीं राष्ट्र-नीति'। बस मुझे उल्लिखित सभी प्रश्नों का उत्तर और इस संकलन का नाम मिल गया। यही है उनका मौलिक सन्देश ! कैसे?

सम्पादन का दायित्व निभाने के लिए समाज को सर्वाधिक प्रभावित करने और दिशा देने में समर्थ 'पत्रकारिता' की अपेक्षाओं के अनुरूप, देश की राजनीतिक स्थितियों और अवस्थाओं का तटस्थ विश्लेषण आवश्यक होता है। पं. क्षितीश जैसा साहित्यकार राजनीति की नीरसता में भी उसकी विद्रूपताओं—विसंगतियों और विडम्बनाओं पर सरस कटाक्ष न करे, यह कैसे संभव है? और उन निष्पक्ष, निर्भीक और बेलाग टिप्पणियों के मूल में पूरे राष्ट्र का हित निहित न हो, यह भी क्योंकर हो सकता है? उनकी तो तीव्र अभिलाषा यही थी कि किसी व्यक्ति, परिवार, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, या पार्टी—विशेष की क्षुद्र सीमा से निकल कर राजनीति सर्वथा राष्ट्रोन्मुखी बने। उन के सभी लेखों में यही स्थायी-भाव है, जो मानवीय नैतिकता के आदर्शों के साथ भारतीय अस्मिता के गौरव का गहरा पुट लेकर अभिव्यक्त हुआ है।

पण्डित जी के चिन्तन की यह उदात्त दिशा उनके अपने संस्कारों, उच्च गुरुकुलीय शिक्षा, आर्यसमाज से गहरे जुड़ाव और गम्भीर स्वाध्याय के आधार पर निर्धारित व निर्मित हुई थी। उनकी विचार—सरणि में समसामयिक परिस्थितियों व अनिवार्यताओं के अनुरूप परिवर्तन एवं परिष्कार भी होता रहता था, क्योंकि वे प्रारंभ से ही अग्रसर

व गतिशील (progressive and dynamic) थे। फिर प्रायः जीवन भर वे सामाजिक गतिविधियों एवं पत्रकारिता से सम्बद्ध रहे। उन्हें भारतीय समाज का जागरूक पहलूआ या पुरोहित भी कहा जा सकता है। उन्हीं जैसे कर्मठ विद्वान् और सचेत विचारक घोषणापूर्वक कह सकते हैं — ‘वयं जागृत्याम राष्ट्रे पुरोहिताः।’ यह वैदिक उद्घोष करने का साहस काश प्रत्येक बुद्धिजीवी कर सके कि ‘जाग रहे हैं राष्ट्र में हम अग्रणी दिग्दर्शक!’

१९८६ में अजमेर में पं. क्षीतीश जी को अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करते हुए उन्हें ‘राष्ट्रीय पत्रकारिता का पुरोधा’ रहकर सम्मानित किया गया था, जो नितान्त समुचित था। उनकी इस राष्ट्र-दृष्टि को आत्मसात् करने के लिए वर्तमान संकलन के अग्रलेख अत्युपयोगी प्रतीत होते हैं। पाठकीय सुविधा हेतु इन को एक विशिष्ट क्रम देने की आवश्यकता अनुभव हुई, जिस से किसी एक विषय से जुड़े हुए लेख एक साथ देखे जा सकें। इस विचार से भारत-राष्ट्र से सम्बद्ध राजनीतिक परिदृश्य का वर्गीकरण निम्न प्रकार से करना उचित समझ गया है:

- I देश-दृष्टि : अर्थात् देश की समस्याएं: विहंगावलोकन, (सामान्य)
- II जाति-धर्म-भाषा की साम्प्रदायिकता : अलगाव-वाद
- III प्रान्तीयता और आतंकवाद : कश्मीर, पंजाब, गोरखालैंड आदि की अनेकता
- IV राजनीतिक उठा-पटक चुनाव-चकल्लस : धूर्तता से भरी राजनीतिक कुचालें
- V पड़ोसी देश : पाक, लंका, नेपाल, चीन
- VI वित्तीय नीति : आर्थिक दशा और स्वदेशी-जागरण
- VII विदेश-नीति/विश्व-परिदृश्य
- VIII राष्ट्रीय सरकार
- IX आदर्श उपाय/सुझाव : राजनीतिक व साम्प्रदायिक समस्याओं के प्रेरणादायी और व्यावहारिक समाधान
- X राष्ट्र-प्रहरी आर्यसमाज : आर्य-महापुरुषों का सत्कार्य एवं आर्य समाज का योगदान

सामान्यतः सोचा जा सकता है कि किसी भी संस्था का पत्र, किन्हीं सीमाओं में बंधा हुआ रहता है, और इस कारण उस पत्र का सम्पादक भी बहुत खुलकर नहीं लिख सकता। किन्तु इन सम्पादकीय अग्रलेखों में ऐसा कोई बन्धन या बाधाएं कहीं दिखाई नहीं देती। इस का निश्चित कारण है। ‘आर्यजगत्’ का सम्पादकत्व संभालते समय ही पं. क्षीतीश जी की एकमात्र शर्त यही थी कि वे जो उचित समझेंगे, उसी को छापेंगे और जिसे अवांछनीय या अनावश्यक व्यक्ति-विज्ञापन

पायेंगे उसे छोड़ देंगे। इस प्रण से बंधे होने के कारण पत्रिका-प्रकाशकों की सीमाएं पण्डित जी के स्वतन्त्र और व्यापक चिन्तन-क्षेत्रों की रुकावट नहीं बन सकीं। इसी कारण पण्डित जी का अपना चिन्तन और दृष्टिकोण मुक्त होकर समाज के सम्मुख आ सका और ये अग्रलेख उनके विश्व-मानवीय व्यक्तित्व का निर्मल दर्पण बन सके।

विश्वास है, भारत के प्राचीन चिन्तन को आधुनिक सन्दर्भों के विश्लेषण के लिए उपयोगी बनाता हुआ यह संकलन राष्ट्रवादी राजनेताओं के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगा। भारत की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों में कोई विशेष अन्तर उपस्थित न होने से ये लेख आज भी सभी विचारशील भारतीयों को चिन्तन की सामग्री दे सकेंगे। आर्य-समाज का एक विद्वान् साहित्यकार आदर्श लेखन की किन सीमाओं को छू सकता है, यह पूरे आर्यजगत् के लिए गौरव एवं प्रेरणा का विषय है। यह कहना उचित तो है, किन्तु ध्यान रहे, पं० क्षितीश जैसा लेखक किसी देश-काल एवं वर्ग की सीमाओं से ऊपर होने से 'कालजयी' कहाता है।

अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए पं० क्षितीश जी धीरे-धीरे विषय की गहराई के साथ-साथ पाठक-श्रोता के हृदय में भी उतरते चले जाते थे। शब्द उनके अन्तस् से उदबुद्ध होते थे, और भाव-तरंगों के अनुरूप ही उनके स्वर व शैली में भी स्वतः आरोह-अवरोह होता जाता था। एक तरफ, उनके तार भारत के इतिहास और संस्कृति से जुड़े होते थे और दूसरी ओर आज की सामयिक समस्याओं की नब्ज पर भी उनका अनुभवी हाथ रखा होता था। अपने स्वाध्याय और सुविचार-मन्थन द्वारा संग हीत रत्नों से वे जीवन में प्रकाश भरने के उपाय सुझाते थे।

वे एक वाग्मी और अप्रतिहत धारा-प्रवाह बोलने वाले श्रेष्ठ वक्ता तो थे ही, एक अत्युत्तम श्रोता भी थे। किसी भी गोष्ठी में पूर्ण एकाग्रभाव से सम्बद्ध विषय पर श्रवण-मनन प्रतिक्रिया करते हुए उन्हें देखना-सुनना सचमुच अहलादकारी होता था। परन्तु वे गम्भीर और यथार्थ अनुभूति-सम्पन्न अभिव्यक्तियों से ही प्रभावित होते थे, थोथे वाग्जाल से नहीं।

पूरे विश्व के साथ स्वयं को एकाकार करने वाला ऐसा कर्मयोगी, जिसके व्यक्तित्व में प्रेम और प्रतिभा का दुर्लभ समन्वय हो, हृदय और बुद्धि में सदा अद्भुत सन्तुलन बना रहा हो, और जिसने धर्म और मानवता में सही सामंजस्य स्थापित किया हो, उसके उभय-लोकयात्रा-निपुण पवित्र चरणों में पुनः पुनः दिनम्र नमन!

-डॉ० वेदव्रत 'आलोक'

१६ सितम्बर, १९६६

## पाठक-गण! क्षमा करें!

पं० क्षितीश जी का, ३१ मई, १९६२ को लिखा गया यह अग्रलेख उनके जीवन का अन्तिम सम्पादकीय था। अत्यन्त शारीरिक अस्वस्थता के कारण रोग-शय्या पर बैठे हुए ही उन्होंने यह लेख अपने ज्येष्ठ पौत्र-अनिमेष को स्वयं बोलकर लिखवाया था।

लेख के अन्त तक आते-आते पण्डित जी भावुक हो उठे और उनके नेत्र छलछला उठे। एक तरह से यह आर्य-जगत् के समस्त पाठकों के लिए उनका विदाई-लेख था।)

अब से तेरह वर्ष पहले जब हमने "आर्य जगत्" के सम्पादन का कार्यभार संभाला था, तब भी कुछ सदाशयी मित्रों ने सलाह दी थी—'बांधो न नाव इस ठांव बन्धु'—क्योंकि तुम मूलरूप से साहित्यकार हो, और तुममें सृजानात्मक और रचनात्मक साहित्य की अनेक संभावनाएं छिपी हैं। पिंजरे में कैद होकर तुम उन्मुक्त गगन में उड़ना भूल जाओगे। परन्तु मैंने उन मित्रों की सलाह पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि मेरे सामने गुरुकुलीय शिक्षा, गुरु-ऋण और ऋषि-ऋण चुकाने का भी दायित्व था। फिर जब से होश संभाला है तब से आर्यसमाज की सेवा में ही लगा रहा हूँ, और कई साल तक वही मेरी जीविका का साधन भी रहा है, इसलिये उसका दायित्व भी मुझे बाधित कर रहा था। फिर सबसे अधिक बात तो यह थी कि दैनिक हिन्दुस्तान से साढ़े बासठ साल की उम्र में कार्यनिवृत्त होने के पश्चात् मेरे सामने मुख्य समस्या यह थी कि यदि मैं अपने शरीर को गतिशील नहीं बनाये रखूंगा, तो घर में बैठकर लिखने-पढ़ने में ही समय व्यतीत करने के कारण मैं शरीर से अपंग हो जाऊंगा। इसलिये भी मैंने इस दायित्व को वहन करना स्वीकार किया। इन तेरह सालों में मैं लगातार इतना गतिशील रहा कि कोई मेरे रिटायर होने की कल्पना नहीं कर सकता था, और मेरी उम्र वास्तविक उम्र से भी दस साल कम ही समझता था।

इसी अवधि में मैंने कई नई पुस्तकें भी लिखीं जो समाज और जनता में अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर सकीं। परन्तु उसी का यह परिणाम हुआ कि इतने अधिक परिश्रम के कारण, दिनरात लिखने-पढ़ने और स्थान-स्थान पर जाकर भाषण देने के परिणाम-स्वरूप मेरे फेफड़े और हृदय दोनों प्रभावित हो गये। और गत १ वर्ष से मैं

लगातार अस्वस्थ चल रहा हूँ। फिर भी मैं पूर्णनिष्ठा के साथ 'आर्य जगत्' के सम्पादन का सारा कार्य, दफ्तर जाने में असमर्थ होने के कारण घर पर रहकर ही संभालता रहा। अब स्थिति यह आ गई कि जिस दिन भी मैं लिखने-पढ़ने का कार्य करता हूँ, उसी दिन मेरा रक्त-चाप काफी बढ़ जाता है। इसलिये डाक्टर ने मुझे लिखने-पढ़ने से भी सर्वथा रोक दिया है, और केवल पूर्ण विश्राम का परामर्श दिया है।

जब मैंने 'आर्य जगत्' का भार संभाला था तब कई मित्रों ने बधाई भी दी थी। परन्तु स्वामी विद्यानन्द जी ने खरी बात लिखी थी—

"तुम दैनिक हिन्दुसान जैसे भारत के श्रेष्ठ समाचार पत्र से रिटायर होकर 'आर्य जगत्' जैसे छोटे से पत्र के सम्पादक बन गये, यह कोई बधाई की बात थोड़े ही है। परन्तु तुम्हारे जैसे सुलझे हुए एक अनुभवी वरिष्ठ पत्रकार के आर्य समाज के एक छोटे से पत्र का सम्पादक बनने पर यह संभावना अवश्य हो गई है कि अब आर्यसमाज का भी कोई पत्र देश के गण्यमान्य प्रतिष्ठित पत्रों में स्थान पा सकेगा।"

मैं पूज्य स्वामी जी महाराज से क्षमा चाहता हूँ कि ऐसा संभव नहीं हो सका, इसलिये उनकी बधाई का पात्र भी मैं बनने के योग्य नहीं हूँ। परन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि जो पत्र पहले कभी ३ अंकों की संख्या को पार नहीं कर सका था, आज वह ५ अंकों की संख्या में खेल रहा है। निःसंदेह इसका श्रेय केवल मुझे नहीं है। किसी भी अखबार की सफलता का तीन चौथाई आधार केवल व्यावसायिक प्रबन्ध-पटुता में निहित होता है, और केवल एक चौथाई सम्पादकीय कुशलता पर। इस व्यावसायिक प्रबन्ध-पटुता का सारा श्रेय केवल श्री रामनाथ सहगल जी को जाता है। इस विषय में उनके जैसा निपुण और कर्मठ व्यक्ति मिलना दुर्लभ है। अब तो स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि हमने 'आर्य जगत्' के और ग्राहक बनाना छोड़ दिया है। क्योंकि जितनी अधिक ग्राहक-संख्या बढ़ती है, उतना ही पत्र का आर्थिक घाटा भी बढ़ता जाता है। यह कौन कल्पना करेगा कि आज 'आर्य जगत्' का वार्षिक बजट तीन लाख रुपयों के लगभग है। 'आर्य जगत्' के जितने ग्राहक आर्य समाजी बन्धु हैं, उससे कहीं अधिक गैर-आर्यसमाजी लोग हैं।

शुरू से ही मेरी दो आकांक्षाएं थीं। मैं चाहता था कि सब सभाओं के सहयोग से समस्त आर्य जगत् का एक अच्छा पत्र निकाला जाय और उसका प्रबन्ध-भार किसी सभा के अधीन न होकर एक आर्यसमाजी परामर्शदाता-संपादक-मंडल के अन्तर्गत होना चाहिये। वह पत्र यदि साप्ताहिक हिन्दुस्तान या धर्मयुग की कोटि का न भी हो, तो कम से कम पाञ्चजन्य की कोटि का तो होना ही चाहिए। मैं उसके लिये निःशुल्क सेवा देने को तैयार था। मैंने दो तीन बार इस विषय में लिखा भी। परन्तु किसी आर्यनेता ने और किसी सभा ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। सबके अपने-अपने अहं थे, और नेता लोग अपनी व्यक्तिगत निजी पब्लिसिटी को छोड़ने को तैयार नहीं थे। अन्त में मैंने यह



समझ कर इस विषय में लिखना छोड़ दिया कि लोग समझेंगे कि निजी यश—विस्तार के लिये ऐसा लिखता हूँ। परन्तु वास्तव में ऐसी बात थी नहीं। मेरी वह आकांक्षा पूरी नहीं हुई, उसका मुझे हमेशा अफसोस रहेगा।

मेरी दूसरी आकांक्षा यह थी कि भारत में अब जिस तरह नई प्रिंटिंग टैक्नोलॉजी आ रही है यदि हम उसे नहीं अपनाएंगे तो जमाने की दौड़ में पिछड़ जाएंगे। इसीलिए मैं और मेरे सहयोगी श्री अशोक कौशिक तथा श्री अजय सहगल लगातार सभा के अधिकारियों को प्रेरित करते रहे कि वे लैटर—प्रिंटिंग प्रैस को छोड़कर कम्प्यूटरीकृत फोटो—टाईप—सैटिंग और ऑफसैट—प्रिंटिंग की तकनीक को अपना लें, तो अच्छा रहे। अन्त में सभा के अधिकारियों को भी बात समझ में आ गई, और महात्मा हंसराज विशेषांक से 'आर्य जगत्' उसी तकनीक से छपने लगा है। आशा है कि भविष्य में पाठकों को 'आर्य जगत्' की छपाई से शिकायत नहीं रहेगी। मुझे संतोष है कि मेरी कम से कम यह छोटी सी आकांक्षा तो पूरी हुई।

गत तेरह वर्षों में पाठकों से जो सहयोग और स्नेह मुझे मिला है उसके लिये मैं उनका किन शब्दों में धन्यवाद करूँ? अब भी कई पाठक मेरे इतने प्रेमी हैं कि हर 'आर्य जगत्' के अंक में वे सबसे पहले मेरा अग्रलेख ही पढ़ना पसन्द करते हैं। आर्य प्रादेशिक सभा के प्रतिनिधि—गण, सभा के अधिकारीगण तथा पाठक—वृन्द से जो सहयोग मिला है, उसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। सभा के अधिकारियों ने अपने वचन के अनुसार मेरे सम्पादक के कार्य में जिस तरह मुझे पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की है, उस उदारता के लिए भी मैं हृदय से उनका कृतज्ञ हूँ।

अब मैं एक जून से पूरे तेरह वर्ष के पश्चात् अपनी अस्वस्थता के कारण स्वेच्छा से 'आर्य जगत्' के सम्पादन का दायित्व छोड़ रहा हूँ। मेरी विवशता है।

पाठक माई—बाप, मुझे क्षमा करेंगे। आपका स्नेह ही मेरी सबसे बड़ी पूंजी है। किसी भी सम्पादक का इससे अधिक और कुछ प्राप्तव्य नहीं होता ! मैं 'आर्य जगत्' से सम्बन्ध—विच्छेद नहीं कर रहा हूँ, केवल सम्पादन का दायित्व छोड़ रहा हूँ। "साप्त-पदीनं सख्यम्" के अनुसार सात कदम साथ—साथ चलने से ही सज्जनों की मैत्री हो जाती है। जब वर और वधू गठ—जोड़ कर सप्तपदी की विधि सम्पन्न करते हैं, तो उनका जीवन—भर का साथ हो जाता है। फिर मैं तो लगातार तेरह साल तक 'आर्य जगत्' के साथ कदम से कदम मिलाकर चलता रहा हूँ, तो उससे मेरी आत्मीयता कैसे समाप्त हो सकती है?

पाठकगण ! फिर आप से विनम्रतापूर्वक क्षमा चाहता हूँ।

- क्षितीश वेदालंकार

३१ मई, १९६२

## करें कौनसा सुमन समर्पित!

हुए आपके ही सौरभ से सुरभित हम जीवन में।

करें कौनसा सुमन समर्पित माली को उपवन में?

लेखन—प्रवचन में शाश्वत वाणी का भरते चमत्कार।

अप्रतिहत अभिव्यक्ति आपकी सफल विरुद्ध 'वेदालंकार'।।

पाठक—श्रोता—भावभूमि पर राज्य आपका हे क्षितीश!

शुभकृत्यों में सोत्साह जुटे, इसलिए कहाये क्या 'कुमार'?

सुरभि नाम की फैल गई, सम्पर्क हुआ जिसके मन में।

वे करें कौन से भाव भेंट निज प्रेरक के स्मृति—चिन्तन में?

हे चक्रचरण! चिर यायावर!! तुमने नापा सारा स्वदेश।

देशान्तर में जा—जा खोजा, जांचा—भांपा पूरा विदेश।।

गिरि—गह्वर वन—कानन घूमे, भूगोल देख इतिहास समझ।

निष्कर्ष निकाले मानवीय, वैदिक संस्कृति का ले सन्देश।।

हस्तामलक सी बनी संसृति, पैठे हो इसके कण—कण में।

अब करें कौनसा शब्द समर्पित खोजी हो विश्वायन में।।

हे तात! आपका निर्देशन जब जब चाहा उपलब्ध हुआ।

वात्सल्य—मधुरता पाकर शुभ, मेरा चिन्तन भी सभ्य हुआ।।

गुणधाम पिताश्री गुरुवर के अभिवादन को सौभाग्य मान।

यह नमन आपके चरणों में करके मैं भी कृतकृत्य हुआ।।

इस उपवन के रक्षक बनकर सब को बांधा अपनेपन में।

मैं करूँ कौन सा स्तवन समर्पित त्राता के अभिवन्दन में।।

हम हुए आपके ही सौरभ से सुरभित इस जीवन में।

फिर करें कौन सा सुमन समर्पित माली को उपवन में।।

—वेदव्रत 'आलोक'

## अनुक्रम

|  |     |
|--|-----|
| पण्डित क्षितीश जी का राष्ट्र-चिन्तन (डॉ० वेदव्रत 'आलोक') ..... | iii |
| पाठक-गण, क्षमा करें! (पं० क्षितीश कुमार वेदालंकार) .....       | vii |
| करें कौनसा सुमन समर्पित! (डॉ० वेदव्रत 'आलोक') .....            | x   |

### देश-दृष्टि

|  |    |
|--|----|
| सफर गांधी से गांधी तक .....                    | ३  |
| स्वागत, हे गणराज्य तुम्हारा ! .....            | ७  |
| सपने चूर-चूर हो गये .....                      | ११ |
| जिस अमृत की तलाश थी .....                      | १४ |
| आजादी की यह कैसी दौड़? .....                   | १७ |
| अन्ध-विश्वासों की बाढ़ .....                   | २० |
| हम कहाँ हैं? .....                             | २४ |
| तलवार नहीं कलम .....                           | २८ |
| खाली हाथ, भरे दिल .....                        | ३२ |
| लोकतंत्र की शर्त .....                         | ३५ |
| क्या इन अन्धविश्वासों की भी कोई सीमा है? ..... | ३६ |
| हे गणतन्त्र-दिवस ! .....                       | ४३ |
| जब तन्त्र लोक पर हावी हो .....                 | ४७ |
| अमृत-कुम्भ में विष .....                       | ५१ |
| दिवाली नहीं दिवाला .....                       | ५५ |
| नई चुनौतियाँ (१) .....                         | ५८ |
| नई चुनौतियाँ (२) .....                         | ६२ |
| नई चुनौतियाँ (३) .....                         | ६६ |

|   |    |
|---|----|
| नई चुनौतियां (४).....                   | ६६ |
| कारवां गुज़र गया, गुबार देखते रहे ..... | ७३ |
| गणराज्य की नई चुनौतियां .....           | ७७ |

## II जाति-धर्म-भाषा की साम्प्रदायिकता

|   |     |
|---|-----|
| भोर की वह किरण कहाँ है? .....               | ८३  |
| उन्माद और घृणा का ताण्डव .....              | ८७  |
| हे श्रीनाथ जी! वे क्यों हैं अनाथ जी? .....  | ९१  |
| जहां सरकार फेल हो गई .....                  | ९५  |
| अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता .....              | ९६  |
| मीरी पीरी: और एक भ्रम .....                 | १०३ |
| कांची और पुरी .....                         | १०७ |
| शाहबुद्दीन उवाच .....                       | १११ |
| शैतानी आयतों की करामात .....                | ११५ |
| राजनीति का हिन्दूकरण .....                  | ११६ |
| शाहबुद्दीन का नया पैतरा .....               | १२३ |
| उर्दू के नाम पर देश को मत बांटिए ! .....    | १२६ |
| हिन्दुत्व के सम्बन्ध में भ्रान्तियां .....  | १३० |
| धर्मनिरपेक्षता की यह कैसी आड़ .....         | १३४ |
| आरक्षण की उलझन भरी समस्या .....             | १३८ |
| आरक्षण या जाति-युद्ध .....                  | १४२ |
| हों युवक डूबे भले ही .....                  | १४६ |
| साम्प्रदायिक कौन? धर्म-निरपेक्ष कौन? .....  | १४६ |
| राम या बाबर .....                           | १५३ |
| धार्मिक पूजा-स्थल-विधेयक .....              | १५७ |
| साफगोई से कतराना क्यों? .....               | १६१ |
| सही राष्ट्रवादी स्वामी श्रद्धानन्द .....    | १६५ |
| हे राम! तुमने फिर आराम हराम कर दिया ! ..... | १६६ |
| ‘धर्म-निरपेक्षता’ शब्द से अनर्थ .....       | १७३ |

### III प्रान्तीयता और आतंकवाद

|                                       |     |
|---------------------------------------|-----|
| पूर्वांचल का ज्वालामुखी .....         | १७६ |
| लहू इन्सां का जायज है .....           | १८४ |
| अराजकता की ओर .....                   | १८८ |
| गोरखा भी खालिस्तानियों के पथ पर ..... | १९२ |
| अब पंजाब में क्या करें? .....         | १९६ |
| पंजाब का सप्त-सूत्री समाधान .....     | २०० |
| अब स्वर्ण-मन्दिर में क्या करें? ..... | २०४ |
| पंजाब की सुध कौन लेगा? .....          | २०६ |
| पंजाब की समस्या कैसे सुलझे? .....     | २१३ |
| कश्मीर में हिन्दुओं का अस्तित्व ..... | २१७ |
| राजीव गांधी की हत्या से सबक .....     | २२१ |
| राष्ट्रीय एकता-परिषद् .....           | २२४ |
| एकता-यात्रा: कोई तो निकला! .....      | २२८ |
| भाजपा की रणनीति .....                 | २३२ |

### IV राजनीतिक उठापटक/चुनाव-चकल्लस:

|  |     |
|--|-----|
| फिर पानीपत का मैदान .....              | २३६ |
| लोकतंत्र के लिए अशुभ .....             | २४३ |
| हवा का रुख .....                       | २४५ |
| कांग्रेस का यह कैसा विकल्प? .....      | २४६ |
| नाच न जाने आंगन टेढ़ा .....            | २५३ |
| विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र (१) ..... | २५७ |
| विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र (२) ..... | २६१ |
| क्या संकट टल गया? .....                | २६५ |
| मण्डल-आयोग का कमण्डल .....             | २६८ |
| मक्खन की हांडी और बिल्ली .....         | २७२ |
| पूत के पांव पालने में .....            | २७५ |
| कसौटी पर राष्ट्र और राष्ट्रवासी .....  | २७८ |

|                                      |     |
|--------------------------------------|-----|
| अभी देर नहीं हुई .....               | २८१ |
| वायदों का अर्थ .....                 | २८४ |
| नई सरकार के गठन से पहले .....        | २८७ |
| पंजाब में चुनाव: एक खतरनाक खेल ..... | २९० |
| वाणी का संयम .....                   | २९४ |
| तेरी गठरी में लागा चोर .....         | २९८ |
| चुनावों का बायकाट, मगर बाद में ..... | ३०२ |

## V पड़ौसी देश

|   |     |
|---|-----|
| क्या पाकिस्तान की चूलेँ हिल रही हैं? .....  | ३०६ |
| लंका में राम की विजय होगी? .....            | ३१४ |
| बाज पराये पाणि पै .....                     | ३१८ |
| बड़े भाई की दादागिरी .....                  | ३२२ |
| 'लंका निशिचर-निकट-निवासा' ही नहीं .....     | ३२६ |
| पाकिस्तान के दो खतरनाक प्रक्षेपास्त्र ..... | ३३० |
| एक नया अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र .....      | ३३३ |
| भाई-भाई और 'बाई-बाई' .....                  | ३३६ |

## VI वित्तनीति

|                                    |     |
|------------------------------------|-----|
| हाय बिचारा सोना! .....             | ३४३ |
| राष्ट्र-लक्ष्मी का आलोक-पर्व ..... | ३४७ |
| हमारी आर्थिक दुर्दशा .....         | ३५१ |
| हमारी आर्थिक दुरवस्था .....        | ३५४ |
| फगुनाहट की यह कैसी आहट ! .....     | ३५८ |
| स्वदेशी जागरण का मूल मन्त्र .....  | ३६२ |

## VII विश्व-परिदृश्य/विदेशनीति

|   |     |
|---|-----|
| फीजी के भारत-वंशी .....                       | ३६६ |
| हिन्द-महासागर का मोती राजनीतिक भंवर में ..... | ३७२ |
| इस्लाम का घेरा .....                          | ३७७ |

|  |     |
|--|-----|
| क्या भारतीयों की आत्मा मर गई है? ..... | ३७६ |
| आधी दुनिया एक तरफ .....                | ३८३ |
| चीन का छात्र-आन्दोलन .....             | ३८७ |
| क्या भारत 'सुपर इंडिया' बनेगा? .....   | ३६१ |
| खाड़ी देशों में खून की होली .....      | ३६५ |
| शान्ति अभी अधर में .....               | ३६८ |
| नये सिकन्दर का नया अभियान .....        | ४०१ |

### VIII राष्ट्रीय सरकार

|                                  |     |
|----------------------------------|-----|
| चुनाव में वोट किसको दें? .....   | ४०७ |
| राजनीति नहीं, राष्ट्र-नीति ..... | ४११ |
| अब तो धूल बैठ चुकी है .....      | ४१५ |

### IX आदर्श-उपाय/सुझाव

|   |     |
|---|-----|
| शिव को जगाओ रे शिव के उपासको ! .....          | ४२१ |
| राष्ट्रीय एकता की कड़ी: हिन्दी .....          | ४२५ |
| भूकम्प और स्वयंसेवी संस्थाएं .....            | ४२७ |
| शिक्षक-दिवस .....                             | ४३० |
| बिना केन्द्र के परिधि कैसी? .....             | ४३२ |
| भारतीय भाषाओं की उपेक्षा कब तक? .....         | ४३६ |
| क्या हिन्दी थोपी जा रही है? .....             | ४४० |
| इतिहास की गंगा का प्रदूषण .....               | ४४४ |
| जरा ठहरिये और सोचिए ! .....                   | ४४८ |
| तेजो सि तेजो मयि धेहि ! .....                 | ४५२ |
| बादे-मुर्दन कुछ नहीं, यह फलसफा मरदूद है ..... | ४५५ |
| शाबाश अरुणाचल ! .....                         | ४५८ |
| अमीना एक थोड़े ही है .....                    | ४६१ |
| गढ़वाल में भूकम्प .....                       | ४६५ |

## X राष्ट्र-प्रहरी आर्यसमाज

|  |     |
|--|-----|
| मधुर—मधुर मेरे दीपक जल .....                                 | ४७३ |
| राजनीति का शिखर-पुरुष आर्यनेता .....                         | ४७८ |
| मॉरिशस और डी.ए.वी. ....                                      | ४८२ |
| शास्त्रार्थ-समर-विजेता महारथी.....                           | ४८५ |
| शिवरात्रि का सन्देश .....                                    | ४८७ |
| आर्यसमाज का स्थापना दिवस .....                               | ४८६ |
| आचार्य वैद्यनाथजी भी नहीं रहे .....                          | ४९२ |
| अनुकरणीय कदम .....   | ४९५ |
| मन्त्रद्रष्टा शतक्रतु सन्तराम .....                          | ४९६ |
| धर्म-परिवर्तन की धमकी .....                                  | ५०२ |
| आर्य-समाज और वल्लभ-सम्प्रदाय .....                           | ५०४ |
| एक ऐतिहासिक कार्य .....                                      | ५०८ |
| पत्रकार कालौनी में 'बार' .....                               | ५११ |
| आर्यसमाज बुद्धिजीवी सम्मेलन .....                            | ५१५ |
| राजर्षि से ब्रह्मर्षि .....                                  | ५१८ |
| 'हम' के हमराही स्वामी श्रद्धानन्द .....                      | ५२१ |
| आर्य—सत्याग्रह की अर्धशताब्दी .....                          | ५२५ |
| मुनिवर पं. गुरुदत्त विद्यार्थी .....                         | ५३० |
| दयानन्द को पहचानो .....                                      | ५३३ |
| आदर्श और व्यवहार .....                                       | ५३६ |
| नया वर्ष: नया उत्साह .....                                   | ५४० |
| जनगणना शुरू हो गई है, सावधान ! .....                         | ५४३ |
| अपने लहू से लेखराम .....                                     | ५४६ |
| स्थित-प्रज्ञ महात्मा हंसराज .....                            | ५५१ |
| साहित्य-अकादमी के पुरस्कार बिकाऊ हैं .....                   | ५५४ |
| सावरकर को ऐसे अन्ध-भक्तों से बचाओ ! .....                    | ५५७ |
| पं० क्षितीश वेदालंकार द्वारा रचित एवं सम्पादित कृतियां ..... | ५६१ |